

विद्या भवन बालिका विद्यापीठ लखीसराय

वर्ग -9

विषय- हिंदी

॥ अध्ययन- सामग्री ॥

क्षितिज

पाठ-2

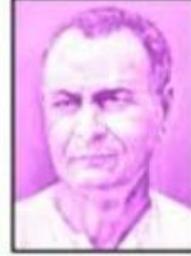
लहासा की ओर (यात्रा वृत्तांत)

- राहुल सांकृत्यायन

निर्देश - दी गई सामग्री को ध्यानपूर्वक पढ़ें व
समझें ।



09110402



राहुल सांकृत्यायन

राहुल सांकृत्यायन का जन्म सन् 1893 में उनके ननिहाल गाँव पंदहा, जिला आजमगढ़ (उत्तर प्रदेश) में हुआ। उनका पैतृक गाँव कनैला था। उनका मूल नाम केदार पांडेय था। उनकी शिक्षा काशी, आगरा और लाहौर में हुई। सन् 1930 में उन्होंने श्रीलंका जाकर बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। तबसे उनका नाम राहुल सांकृत्यायन हो गया। राहुल जी पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, तिब्बती, चीनी, जापानी, रूसी सहित अनेक भाषाओं के जानकार थे। उन्हें महापंडित कहा जाता था। सन् 1963 में उनका देहांत हो गया।

राहुल सांकृत्यायन ने उपन्यास, कहानी, आत्मकथा, यात्रावृत्त, जीवनी, आलोचना, शोध आदि अनेक विधाओं में साहित्य-सृजन किया। इतना ही नहीं उन्होंने अनेक ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद भी किया। मेरी जीवन यात्रा (छह भाग), दर्शन-दिग्दर्शन, बाइसवीं सदी, वोल्गा से गंगा, भागो नहीं दुनिया को बदलो, दिमागी गुलामी, घुमक्कड़ शास्त्र उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। साहित्य के अलावा दर्शन, राजनीति, धर्म, इतिहास, विज्ञान आदि विभिन्न विषयों पर राहुल जी द्वारा रचित पुस्तकों की संख्या लगभग 150 है। राहुल जी ने बहुत सी लुप्तप्राय सामग्री का उद्धार कर अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया है।

यात्रावृत्त लेखन में राहुल जी का स्थान अन्यतम है। उन्होंने घुमक्कड़ी का शास्त्र रचा और उससे होने वाले लाभों का विस्तार से वर्णन करते हुए मॉज़िल के स्थान पर यात्रा को ही घुमक्कड़ का उद्देश्य बताया। घुमक्कड़ी

वह नेपाल से तिब्बत जाने का मुख्य रास्ता है। फरी-कलिङ्पोङ् का रास्ता जब नहीं खुला था, तो नेपाल ही नहीं हिंदुस्तान की भी चीजें इसी रास्ते तिब्बत जाया करती थीं। यह व्यापारिक ही नहीं सैनिक रास्ता भी था, इसीलिए जगह-जगह फ़ौजी चौकियाँ और किले बने हुए हैं, जिनमें कभी चीनी पलटन रहा करती थी। आजकल बहुत से फ़ौजी मकान गिर चुके हैं। दुर्ग के किसी भाग में, जहाँ किसानों ने अपना बसेरा बना लिया है, वहाँ घर कुछ आबाद दिखाई पड़ते हैं। ऐसा ही परित्यक्त एक चीनी किला था। हम वहाँ चाय पीने के लिए ठहरे। तिब्बत में यात्रियों के लिए बहुत सी तकलीफ़ें भी हैं और कुछ आराम की बातें भी। वहाँ जाति-पाँति, छुआछूत का सवाल ही नहीं है और न औरतें परदा ही करती हैं। बहुत निम्नश्रेणी के भिखमंगों को लोग चोरी के डर से घर के भीतर नहीं आने देते; नहीं तो आप बिलकुल घर के भीतर चले जा सकते हैं। चाहे आप बिलकुल अपरिचित हों, तब भी घर की बहू या सासु को अपनी झोली में से चाय दे सकते हैं। वह आपके लिए उसे पका देगी। मक्खन और सोडा-नमक दे दीजिए, वह चाय चोड़ी में कूटकर उसे दूधवाली चाय के रंग की बना के मिट्टी के टोटीदार बरतन (खोटी) में रखके आपको दे देगी। यदि बैठक की जगह चूल्हे से दूर है और आपको डर है कि सारा मक्खन आपकी चाय में नहीं पड़ेगा, तो आप खुद जाकर चोड़ी में चाय मथकर ला सकते हैं। चाय का रंग तैयार हो जाने पर फिर नमक-मक्खन डालने की जरूरत होती है।

दूसरे दिन हम घोड़ों पर सवार होकर ऊपर की ओर चले। डौंडे से पहिले एक जगह चाय पी और दोपहर के वक्त डौंडे के ऊपर जा पहुँचे। हम समुद्रतल से 17-18 हजार फीट ऊँचे खड़े थे। हमारी दक्खिन तरफ पूरब से पच्छिम की ओर हिमालय के हजारों श्वेत शिखर चले गए थे। भीटे की ओर दीखने वाले पहाड़ बिलकुल नंगे थे, न वहाँ बरफ की सफ़ेदी थी, न किसी तरह की हरियाली। उत्तर की तरफ बहुत कम बरफ वाली चोटियाँ दिखाई पड़ती थीं। सर्वोच्च स्थान पर डौंडे के देवता का स्थान था, जो पत्थरों के ढेर, जानवरों की सींगों और रंग-बिरंगे कपड़े की झँडियों से सजाया गया था। अब हमें बराबर उतराई पर चलना था। चढ़ाई तो कुछ दूर थोड़ी मुश्किल थी, लेकिन उतराई बिलकुल नहीं। शायद दो-एक और सवार साथी हमारे साथ चल रहे थे। मेरा घोड़ा कुछ धीमे चलने लगा। मैंने समझा कि चढ़ाई की थकावट के कारण ऐसा कर रहा है, और उसे मारना नहीं चाहता था। धीरे-धीरे वह बहुत पिछड़ गया और मैं दोन्विक्वस्तों की तरह अपने घोड़े पर झुमता हुआ चला जा रहा था। जान नहीं पड़ता था कि घोड़ा आगे जा रहा है या पीछे। जब मैं जोर देने लगता, तो वह और सुस्त पड़ जाता। एक जगह दो रास्ते फूट रहे थे, मैं बाएँ का रास्ता ले मील-डेढ़ मील चला गया। आगे एक घर में पूछने से पता लगा कि लङ्कोर का रास्ता दाहिने वाला था। फिर लौटकर उसी को पकड़ा। चार-पाँच बजे के करीब मैं गाँव से मील-भर पर था, तो सुमति इंतज़ार करते हुए मिले। मंगोलों का मुँह वैसे ही लाल होता है और अब तो वह पूरे गुस्से में थे। उन्होंने कहा—“मैंने दो टोकरी कंडे फूँ डाले, तीन-तीन बार चाय को गरम किया।” मैंने बहुत नरमी से जवाब दिया—“लेकिन मेरा कसूर नहीं है मित्र! देख नहीं रहे हो, कैसा घोड़ा मुझे मिला है! मैं तो रात तक पहुँचने की उम्मीद रखता था।” खैर, सुमति को जितनी जल्दी गुस्सा आता था, उतनी ही जल्दी वह ठंडा भी हो जाता था। लङ्कोर में वह एक अच्छी जगह पर ठहरे थे। यहाँ भी उनके अच्छे यजमान थे। पहिले चाय-सत्तू खाया गया, रात को गरमागरम थुक्या मिला।

अब हम तिड्डी के विशाल मैदान में थे, जो पहाड़ों से घिरा टापू-सा मालूम होता था, जिसमें दूर एक छोटी-सी पहाड़ी मैदान के भीतर दिखाई पड़ती है। उसी पहाड़ी का नाम है तिड्डी-समाधि-गिरि। आसपास के गाँव में भी सुमति के कितने ही यजमान थे, कपड़े की पतली-पतली चिरी बत्तियों के गंडे खतम नहीं हो सकते थे, क्योंकि बोधगया से लाए कपड़े के खतम हो जाने पर किसी कपड़े से बोधगया का गंडा बना लेते थे। वह अपने यजमानों के पास जाना चाहते थे। मैंने सोचा, यह तो हफता-भर उधर ही लगा दूँगा। मैंने उनसे कहा कि जिस गाँव में ठहरना हो, उसमें भले ही गंडे बाँट दो, मगर आसपास के गाँवों में मत जाओ; इसके लिए मैं तुम्हें लहासा पहुँचकर रुपये दे दूँगा। सुमति ने स्वीकार किया। दूसरे दिन हमने भरिया ढूँढ़ने की कोशिश की, लेकिन कोई न मिला। सवेरे ही चल दिए होते तो अच्छा था, लेकिन अब 10-11 बजे की तेज़ धूप में चलना पड़ रहा था। तिब्बत की धूप भी बहुत कड़ी मालूम होती है, यद्यपि थोड़े से भी मोटे कपड़े से सिर को ढाँक लें, तो गर्मी खतम हो जाती है। आप 2 बजे सूरज की ओर मुँह करके चल रहे हैं, ललाट धूप से जल रहा है और पीछे का कंधा बरफ़ हो रहा है। फिर हमने पीठ पर अपनी-अपनी चीज़ें लादी, डंडा हाथ में लिया और चल पड़े। यद्यपि सुमति के परिचित तिड्डी में भी थे, लेकिन वह एक और यजमान से मिलना चाहते थे, इसलिए आदमी मिलने का बहाना कर शोकर विहार की ओर चलने के लिए कहा। तिब्बत की ज़मीन बहुत अधिक छोटे-बड़े जागीरदारों में बँटी है। इन जागीरों का बहुत ज़्यादा हिस्सा मठों (विहारों) के हाथ में है। अपनी-अपनी जागीर में हरेक जागीरदार कुछ खेती खुद भी कराता है, जिसके लिए मज़दूर बेगार में मिल जाते हैं। खेती का इंतज़ाम देखने के लिए वहाँ कोई भिक्षु भेजा जाता है, जो जागीर के आदमियों के लिए राजा से कम नहीं होता। शोकर की खेती के मुखिया भिक्षु (नम्से) बड़े भद्र पुरुष थे। वह बहुत प्रेम से मिले, हालाँकि उस वक्त मेरा भेष ऐसा नहीं था कि उन्हें कुछ भी खयाल करना चाहिए था। यहाँ एक अच्छा मंदिर था; जिसमें कन्जुर (बुद्धवचन-अनुवाद) की हस्तलिखित 103 पोथियाँ रखी हुई थीं, मेरा आसन

भी वहीं लगा। वह बड़े मोटे कागज पर अच्छे अक्षरों में लिखी हुई थीं, एक-एक पोथी 15-15 सेर से कम नहीं रही होगी। सुमति ने फिर आसपास अपने यजमानों के पास जाने के बारे में पूछा, मैं अब पुस्तकों के भीतर था, इसलिए मैंने उन्हें जाने के लिए कह दिया। दूसरे दिन वह गए। मैंने समझा था 2-3 दिन लगेंगे, लेकिन वह उसी दिन दोपहर बाद चले आए। तिड्डी गाँव वहाँ से बहुत दूर नहीं था। हमने अपना-अपना सामान पीठ पर उठाया और भिक्षु नम्से से विदाई लेकर चल पड़े।

प्रश्न-अभ्यास

